Chapter सत्रह

हिरण्याक्ष की दिग्विजय

मैत्रेय उवाच
निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शङ्कयोज्झिताः ।
ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः—मैत्रेय मुनि ने; उवाच—कहा; निशम्य—सुनकर; आत्म-भुवा—ब्रह्मा द्वारा; गीतम्—व्याख्या; कारणम्—कारण; शङ्कया—भय से; उज्झिताः—मुक्त; ततः—तब; सर्वे—सभी; न्यवर्तन्त—लौट गये; त्रि-दिवाय—स्वर्ग लोक को; दिव-ओकसः—देवतागण (जो स्वर्गलोक के वासी हैं)।

श्रीमैत्रेय ने कहा—विष्णु से उत्पन्न ब्रह्मा ने जब अन्धकार का कारण कह सुनाया, तो स्वर्गलोक के निवासी देवता समस्त भय से मुक्त हो गये। इस प्रकार वे सभी अपने-अपने लोकों को वापस चले गये।

तात्पर्य : स्वर्गलोक के निवासी देवता भी ब्रह्माण्ड के अन्धकारग्रस्त होने जैसी घटनाओं से अत्यन्त भयभीत हो जाते हैं, अतः वे ब्रह्मा के पास परामर्श हेतु गये। इससे यह संकेत मिलता है कि इस भौतिक जगत में प्रत्येक जीवात्मा भय से ग्रस्त है। इस संसार में चार मुख्य कार्यकलाप हैं—आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन। देवताओं में भी भय तत्व विद्यमान रहता है। प्रत्येक लोक में, यहाँ तक कि स्वर्गलोक में, जिसमें सूर्य तथा चन्द्र लोक सम्मिलित हैं और इस पृथ्वी लोक में भी पशु जीवन के जैसे ही सिद्धान्त पाये जाते हैं। अन्यथा देवता अन्धकार से इतने भयभीत क्यों होते? देवताओं तथा सामान्य जनों में यही अन्तर होता है कि देवता अधिकारी के पास जाते हैं जबकि इस पृथ्वी पर रहने वाले सामान्य जन अधिकारी का अनादर करते हैं। यदि लोग अधिकारी के पास पहुँच सकें, तो इस बह्माण्ड की प्रत्येक प्रतिकूल अवस्था सुधर जाये। अर्जुन भी कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में विचलित हुआ था, किन्तु वह अधिकारी अर्थात् श्रीकृष्ण के पास पहुँचा और उसकी समस्या हल हो गई। इस घटना से यही उपदेश मिलता है कि हो सकता है कि हम किसी भौतिक परिस्थिति से विचलित हों, किन्तु यदि हम ऐसे अधिकारी के पास पहुँच सकें जो समस्या की वास्तव में व्याख्या कर सके तो हमारी समस्या हल हो जाती है। देवता उत्पात का अर्थ जानने के लिए ब्रह्मा के पास गये और

उनसे सुनने के बाद वे संतुष्ट होकर अपने-अपने धाम शान्तिपूर्वक वापस चले गये।

दितिस्तु भर्तुरादेशादपत्यपरिशङ्किनी ।
पूर्णे वर्षशते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ॥ २ ॥

शब्दार्थ

दितिः—दिति; तु—लेकिन; भर्तुः—अपने पति की; आदेशात्—आज्ञा से; अपत्य—अपने बच्चों से; परिशङ्किनी—शंकालु; पूर्णे—पूरे; वर्ष-शते—एक सौ वर्ष बाद; साध्वी—पतिव्रता स्त्री ने; पुत्रौ—दो पुत्र; प्रसुषुवे—जन्म दिया; यमौ—जुड़वाँ।

साध्वी दिति अपने गर्भ में स्थित सन्तानों से देवों के प्रति उपद्रव किये जाने के लिए अत्यधिक शंकालु थी और उसके पति ने भी यही भविष्यवाणी की थी। अत: उसने एक सौ वर्षों के गर्भकाल के पश्चात् जुड़वाँ पुत्रों को जन्म दिया।

उत्पाता बहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च लोकस्योरुभयावहाः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

उत्पाताः—प्राकृतिक उपद्रव; बहवः—अनेक; तत्र—वहाँ; निपेतुः—घटित हुए; जायमानयोः—उनके जन्म के समय; दिवि—स्वर्गलोक में; भुवि—पृथ्वी पर; अन्तरिक्षे—बाह्य आकाश में; च—तथा; लोकस्य—संसार का; उरु—अत्यधिक; भय-आवहाः—भय उत्पन्न करने वाला, भयानक।

दोनों असुरों के जन्म के समय स्वर्गलोक, पृथ्वीलोक तथा इन दोनों के मध्य के लोकों में अनेक प्राकृतिक उपद्रव हुए जो अत्यन्त भयावने एवं विस्मयपूर्ण थे।

सहाचला भुवश्चेलुर्दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः ।
सोल्काश्चाशनयः पेतुः केतवश्चार्तिहेतवः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

सह—के साथ साथ; अचलाः—पर्वत; भुवः—पृथ्वी के; चेलुः—हिल उठी; दिशः—दिशाएँ; सर्वाः—समस्त; प्रजज्वलुः—अग्नि के समान धधक उठीं; स—साथ; उल्काः—उल्कापिंड; च—तथा; अशनयः—वज्र; पेतुः—गिर पड़े; केतवः—पुच्छल तारे; च—तथा; आर्ति-हेतवः—समस्त अशुभों का कारण।

पृथ्वी पर पर्वत काँपने लगे और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो सर्वत्र अग्नि ही अग्नि हो। उल्काओं, पुच्छल तारों तथा वज्रों के साथ-साथ शनि जैसे अनेक अशुभ ग्रह दिखाई देने लगे।

तात्पर्य : जब किसी लोक में प्राकृतिक उत्पात होने लगें तो यह समझना चाहिए कि

किसी असुर ने जन्म लिया है। वर्तमान युग में आसुरी लोगों की संख्या बढ़ रही है, फलतः प्राकृतिक उत्पातों में भी वृद्धि हो रही है। इसमें कोई सन्देह नहीं है, जैसाकि *भागवत* के कथन से हम स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं।

ववौ वायुः सुदुःस्पर्शः फूत्कारानीरयन्मुहुः ।
उन्मूलयन्नगपतीन्वात्यानीको रजोध्वजः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ववौ—बहने लगीं; वायुः—हवाएँ; सु-दुःस्पर्शः—छूने में बुरी लगने वाली; फूत्-कारान्—साँय-साँय का शब्द; ईरयन्—निकालती हुई; मुहुः—पुनःपुनः; उन्मूलयन्—उखाड़ती हुई; नग-पतीन्—विशाल वृक्षों को; वात्या—अंधड़; अनीकः—सेनाएँ; रजः—धूल; ध्वजः—झंडे, पताकाएँ।

बारम्बार साँय-साँय करती तथा विशाल वृक्षों को उखाड़ती हुई अत्यन्त दुस्सह-स्पर्शी हवाएँ बहने लगीं। उस समय अंधड़ उनकी सेनाएँ और धूल के मेघ उनकी ध्वजाएँ लग रही थीं।

तात्पर्य : जब अंधड़ चले, अत्यधिक गर्मी या हिमपात हो और तूफानी हवाओं से वृक्ष उखड़ जाँय, तो यह समझना चाहिए कि आसुरी जनसंख्या बढ़ रही है, जिसके कारण ये प्राकृतिक उत्पात हो रहे हैं। आज भी इस विश्व में अनेक ऐसे देश हैं जहाँ ये सभी उत्पात हो रहे हैं। यह सारे संसार में सत्य है। वहाँ पर्याप्त धूप नहीं रहती, आकाश सदैव बादलों से घिरा रहता है, बर्फ गिरती है और कड़ाके की सर्दी पड़ती है। इनसे इसकी पुष्टि होती है कि ऐसे स्थानों में उन आसुरी लोगों का निवास है, जो सभी प्रकार के वर्जित पापमय कार्य करने के आदी हो गये हैं।

उद्धसत्तडिदम्भोदघटया नष्टभागणे ।
व्योम्नि प्रविष्टतमसा न स्म व्यादृश्यते पदम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

उद्धसत्—जोर जोर से हँसकर; तडित्—बिजली; अम्भोद—बादलों के; घटया—समूह; नष्ट—विनष्ट; भा-गणे—नक्षत्र; व्योम्नि—आकाश में; प्रविष्ट—घिरा हुआ; तमसा—अंधकार से; न—नहीं; स्म व्यादृश्यते—दिखता था; पदम्—कोई स्थान।

आकाश के नक्षत्रों को मेघों की घटाओं ने घेर लिया और उनमें कभी कभी बिजली

चमक जाती तो लगता मानो जोर से हँस रही हो। चारों ओर अन्धकार का राज्य था और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था।

चुक्रोश विमना वार्धिरुदूर्मिः क्षुभितोदरः ।
सोदपानाश्च सरितश्चुक्षुभुः शुष्कपङ्कजाः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

चुक्रोश—जोर जोर से विलाप करने लगा; विमनाः—दुखी; वार्धिः—समुद्र; उदूर्मिः—ऊँची ऊँची लहरें; क्षुभित—विक्षुब्ध; उदरः—भीतर के प्राणी; स-उदपानाः—जलाशयों तथा कुंओं के पेयजल सहित; च—तथा; सरितः—नदियाँ; चुक्षुभुः—क्षुब्ध हुए; शुष्क—सूखे हुए; पङ्कजाः—कमल पुष्प।

उत्ताल तरंगों से युक्त सागर मानो शोक में जोर जोर से विलाप कर रहा था और उसमें रहने वाले प्राणियों में हलचल मची थी। नदियाँ तथा सरोवर भी विक्षुब्ध हो उठे और कमल मुरझा गये।

मुहुः परिधयोऽभूवन्सराह्वोः शशिसूर्ययोः ।
निर्घाता रथनिर्ह्रादा विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

मुहुः—पुनः पुनः; परिधयः—कुहरे से युक्त मण्डल; अभूवन्—प्रकट हुआ; स-राह्वोः—ग्रहणों के समय; शशि—चन्द्रमा का; सूर्ययोः—सूर्य का; निर्घाताः—गर्जन; रथ-निर्ह्रादाः—घर्घर करते रथों का सा शब्द; विवरेभ्यः—पर्वत की गुफाओं से; प्रजज्ञिरे—उत्पन्न हो रहा था।

सूर्य तथा चन्द्रमा के चारों ओर ग्रहण लगने के समय अमंगल-सूचक मण्डल बार-बार दिखाई पड़ने लगा। बिना बादलों के ही गरजने की ध्वनि और पर्वत की गुफाओं से रथों जैसी घरघराहट सुनाई पड़ने लगी।

अन्तर्ग्रामेषु मुखतो वमन्त्यो वह्निमुल्बणम् ।
सृगालोलूकटङ्कारैः प्रणेदुरशिवं शिवाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

अन्तः—भीतर; ग्रामेषु—गाँवों के; मुखतः—उनके मुखों से; वमन्त्यः—उगलते हुए; वह्निम्—आग; उल्बणम्—भयावनी; सृगाल—सियार; उलूक—उल्लू; टङ्कारैः—चीख से; प्रणेदुः—उत्पन्न; अशिवम्—अशुभ, अमंगलसूचक; शिवाः—सियारिनें।

गाँवों के भीतर सियारिनें अपने मुखों से दहकती आग उगलती हुई अमंगल सूचक शब्द करने लगीं। इस रोने में सियार तथा उल्लू भी साथ हो लिये।

सङ्गीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधराम् ।
व्यमुञ्चन्विविधा वाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सङ्गीत-वत्—मानो गा रहे हों; रोदन-वत्—रोने के समान; उन्नमय्य—उठाकर; शिरोधराम्—गर्दन; व्यमुञ्चन्—निकालते हुए; विविधाः—नाना प्रकार की; वाचः—चीत्कार; ग्राम-सिंहाः—कुत्ते; ततः ततः—जहाँ तहाँ।

जहाँ तहाँ कुत्ते अपनी गर्दन ऊपर उठा उठाकर शब्द करने लगे मानो कभी वे गा रहे हों और कभी विलाप कर रहे हों।

खराश्च कर्कशैः क्षत्तः खुरैर्घ्नन्तो धरातलम् ।
खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन्वरूथशः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

खराः—गधे; च—तथा; कर्कशैः—कटु; क्षत्तः—हे विदुर; खुरैः—अपने खुरों से; घ्नन्तः—मारते हुए; धरा-तलम्—पृथ्वी पर; खाः-कार—रेंकते हुए; रभसाः—बुरी तरह से संलग्न; मत्ताः—प्रमत्त, पागल; पर्यधावन्—इधर उधर दौड़ने लगे; वरूथशः—झुंडों में।

हे विदुर, झुंड के झुंड गधे अपने कठोर खुरों से पृथ्वी पर प्रहार करते हुए तथा जोर जोर से रेंकते हुए इधर उधर दौड़ने लगे।

तात्पर्य : गधों की जाति भी अपने को अत्यन्त आदरणीय समझती है, अतः जब वे इधर उधर झुंडों में दौड़ने लगते हैं, तो मानव समाज के लिए यह अपशकुन माना जाता है।

रुदन्तो रासभत्रस्ता नीडादुदपतन्खगाः ।
घोषेऽरण्ये च पशवः शकृन्मूत्रमकुर्वत ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

रुदन्तः—रोते हुए; रासभ—गधों के द्वारा; त्रस्ताः—भयभीत; नीडात्—घोंसले से; उदपतन्—ऊपर उड़ने लगे; खगाः—पक्षी; घोषे—गोशाला में; अरण्ये—जंगल में; च—तथा; पशवः—पशु; शकृत्—मल; मूत्रम्—मूत्र; अकुर्वत—त्याग दिया।

गधों के रेंकने से भयभीत होकर पक्षी अपने घोसलों से निकलकर चीख चीख कर उड़ने लगे और गोशालाओं तथा जंगलों में पशु मल-मूत्र त्यागने लगे।

गावोऽत्रसन्नसृग्दोहास्तोयदाः पूयवर्षिणः ।
व्यरुदन्देवलिङ्गानि द्रुमाः पेतुर्विनानिलम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

गावः—गाएँ; अत्रसन्—भयभीत थीं; असृक्—रक्त; दोहाः—प्रदान किया; तोयदाः—बादल; पूय—पीब; वर्षिणः—वर्षा करते हुए; व्यरुदन्—अश्रुपात करने लगे; देव-लिङ्गानि—देवों के विग्रह; द्रुमाः—वृक्ष; पेतुः—गिर पड़े; विना—की अनुपस्थिति में; अनिलम्—हवा का झोंका, आँधी।.

भयभीत होने के कारण गौवें दूध के स्थान पर रक्त देने लगीं, बादलों से पीब बरसने लगा, मन्दिरों में देवों के विग्रहों से आँसू निकलने लगे और वृक्ष बिना आँधी के ही गिरने लगे।

ग्रहान्पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापि दीपिताः ।
अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्च परस्परम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

ग्रहान्—ग्रह (लोक); पुण्य-तमान्—अत्यन्त शुभ; अन्ये—अन्य (क्रूर ग्रह); भ-गणान्—नक्षत्र समूह; च—यथा; अपि—भी; दीपिताः—प्रकाशमान; अतिचेरुः—अध्यारोपित; वक्र-गत्या—टेढ़ी मेढ़ी चाल से; युयुधुः—परस्पर भिड़ गये; च—तथा; परः-परम्—एक दूसरे से।.

मंगल तथा शनि जैसे क्रूर ग्रह बृहस्पति, शुक्र तथा अनेक शुभ नक्षत्रों को लाँघकर तेजी से चमकने लगे। टेढ़े मेढ़े रास्तों में घूमने के कारण ग्रहों में परस्पर टक्कर होने लगी।

तात्पर्य : यह ब्रह्माण्ड भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के वश में रहकर घूम रहा है। सतोगुणी जीवात्माएँ पवित्र योनियां मानी जाती हैं—यथा पवित्र देश, पवित्र वृक्ष आदि। ग्रहों (लोकों) के साथ भी ऐसा ही है। अनेक ग्रह शुभ माने जाते हैं और अन्य ग्रह अशुभ। शनि तथा मंगल अशुभसूचक हैं। जब पवित्र ग्रह बहुत तेजी से चमकते हैं, तो यह शुभसूचक होता है, किन्तु जब अशुभ ग्रह तेजी से चमकते हैं, तो यह शुभसूचक नहीं माना जाता।

दृष्ट्वान्यांश्च महोत्पातानतत्तत्त्वविदः प्रजाः ।
ब्रह्मपुत्रानृते भीता मेनिरे विश्वसम्प्लवम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; अन्यान्—अन्य लोग; च—यथा; महा—महान; उत्पातान्—अपशकुन; अ-तत्-तत्त्व-विदः—रहस्य को न जानते हुए; प्रजाः—लोग; ब्रह्म-पुत्रान्—ब्रह्मा के पुत्रों (चारों कुमारों); ऋते—के सिवाय; भीताः—अन्यन्त डरे हुए; मेनिरे—सोचा; विश्व-सम्प्लवम्—विश्व का विलय।.

इस प्रकार के तथा अन्य अनेक अपशकुनों को देखकर ब्रह्मा के चारों ऋषि-पुत्र, जिन्हें जय तथा विजय के पतन एवं दिति के पुत्रों के रूप में जन्म लेने का ज्ञान था,

उनके अतिरिक्त सभी लोग भयभीत हो उठे। उन्हें इन उत्पातों के मर्म का पता न था और वे सोच रहे थे कि ब्रह्माण्ड का प्रलय होने वाला है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* के सप्तम अध्याय के अनुसार प्रकृति के नियम इतने कठोर हैं कि कोई भी जीवात्मा इनका अतिक्रमण नहीं कर सकता। यह भी बताया गया है कि कृष्णभक्ति में पूर्णतया कृष्ण को अर्पित जीवात्मा ही बच सकता है। *श्रीमद्भागवत* के इस विवरण से हम यह जान सकते हैं कि दो महान् असुरों के जन्म लेने से अनेकानेक प्राकृतिक उत्पात होने प्रारम्भ हो गये। अप्रत्यक्ष रूप से यह समझना चाहिए कि जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है, जब भी पृथ्वी पर ऐसे उत्पात सतत होते हैं, तो यह इस बात का सूचक है कि कुछ आसुरी लोग उत्पन्न हो गए हैं, अथवा उनकी संख्या बढ़ गई है। पुराकाल में दिति से उत्पन्न हुए केवल दो असुर थे तो भी इतना अधिक उत्पात हुआ था। आजकल, विशेष रूप से इस कलियुग में, ऐसे उत्पात तो नित्यप्रति ही देखे जाते हैं, जो इसके सूचक हैं कि आसुरी जनसंख्या में निश्चित रूप से वृद्धि हुई है।

आसुरी जनसंख्या में वृद्धि को रोकने के लिए वैदिक सभ्यता में सामाजिक जीवन के अनेक विधि-विधान थे, जिनमें से अच्छी संतान पाने के लिए गर्भाधान संस्कार प्रमुख था। *भगवद्गीता* में अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं कि यदि वर्णसंकर लोग उत्पन्न होंगे तो यह सारा संसार नरक जैसा लगेगा। लोग विश्व में शान्ति चाहते हैं, किन्तु गर्भाधान संस्कार का लाभ न उठा सकने के कारण अनेक अवांछित शिशु जन्म लेते रहते हैं—जिस प्रकार दिति के गर्भ से असुर उत्पन्न हुए थे। दिति इतनी कामातुर थी कि उसने अपने पति को अशुभ समय में संभोग के लिए बाध्य कर दिया जिसके कारण उत्पात मचाने वाले असुरों का जन्म हुआ। मनुष्य को चाहिए कि सन्तान उत्पन्न करने हेतु संभोग करते समय नियम का पालन करे जिससे अच्छी सन्तान हो। यदि प्रत्येक परिवार वैदिक विधि का पालन करे तो अच्छी सन्तान उत्पन्न होंगी, असुर नहीं होगे और विश्व में स्वत: शान्ति स्थापित हो सकेगी। यदि हम अपने जीवन में सामाजिक शान्ति के नियमों का पालन नहीं करते तो हमें शान्ति की आशा नहीं करनी चाहिए।

उल्टे, हमें प्राकृतिक नियमों की कठोर प्रतिक्रियाओं से जूझना होगा।

तावादिदैत्यौ सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ ।
ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपती इव ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तौ—वे दोनों; आदि-दैत्यौ—सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न असुर; सहसा—शीघ्र, तेजी से; व्यज्यमान—प्रकट होकर; आत्म—अपने; पौरुषौ—शौर्य; ववृधाते—बड़े हुए; अश्म-सारेण—इस्पात तुल्य; कायेन—शरीर से; अद्रि-पती—दो विशाल पर्वत; इव—सदृश।

पुराकाल में प्रकट इन दोनों असुरों के शरीर में शीघ्र ही असामान्य लक्षण प्रकट होने लगे, उनके शारीरिक ढाँचे इस्पात के समान थे और वे दो विशाल पर्वतों के समान बढ़ने लगे।

तात्पर्य : संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं—एक असुर कहलाते हैं तथा दूसरे देवता। देवता मानव समाज की आत्मिक उन्नति करने में लगे रहते हैं, किन्तु असुर शारीरिक तथा भौतिक उन्नति में विश्वास करते हैं। दिति के गर्भ से उत्पन्न दोनों असुर अपने शरीरों को लौह के समान शक्तिशाली बनाने लगे और वे इतने ऊँचे थे कि आसमान को छूते लग रहे थे। वे अमूल्य आभूषणों से अलंकृत थे और इसी को वे जीवन की सार्थकता समझ रहे थे। प्रारम्भ में वैकुण्ठ के दोनों द्वारपालों, जय तथा विजय, को इस भौतिक संसार में जन्म लेना था जहाँ साधुओं के शाप के अनुसार उन्हें श्रीभगवान् के प्रति सदा क्रुद्ध रहने की भूमिका अदा करनी थी। अत: आसुरी व्यक्तियों के रूप में वे इतने क्रुद्ध रहने लगे कि श्रीभगवान् से उनका कोई प्रयोजन नहीं रहा और वे भौतिक तथा शारीरिक उन्नति में ही लगे रहे।

दिविस्पृशौ हेमकिरीटकोटिभिर्
निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गदाभुजौ ।
गां कम्पयन्तौ चरणै: पदे पदे
कट्या सुकाञ्च्यार्कमतीत्य तस्थतु: ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

दिवि-स्पृशौ—आकाश को छूने वाला; हेम—स्वर्णिम; किरीट—उनके मुकुटों का; कोटिभि:—शिखरों से; निरुद्ध—अवरुद्ध; काष्ठौ—दिशाएँ; स्फुरत्—चमकीले; अङ्गदा—बाजूबंद; भुजौ—जिनकी बाँहों में; गाम्—पृथ्वी

को; कम्पयन्तौ—हिलाते हुए; चरणैः—अपने पाँवों से; पदे पदे—पत्येक पद पर; कट्या—अपनी कमर से; सु-काञ्च्या—आभूषित करधनियों से; अर्कम्—सूर्य; अतीत्य—पार करके; तस्थतुः—वे खड़े हुए।.

उनके शरीर इतने ऊँचे हो गये कि उनके स्वर्ण-मुकुटों के शिखर मानो आकाश को चूम रहे हों। उनके कारण सभी दिशाएँ अवरुद्ध हो जाती थीं और जब वे चलते तो उनके प्रत्येक पग पर पृथ्वी हिलती थी। उनके बाहुओं में चमकीले बाजूबन्द सुशोभित थे। उनकी कमर में परम सुन्दर करधनियाँ बँधी थीं और जब वे खड़े होते तो ऐसा लगता मानो उनकी कमर से सूर्य ढक गया हो।

तात्पर्य : आसुरी सभ्यता में लोग अपने शरीर को इस प्रकार गठित करते हैं कि जब वे सड़क पर चलें तो धरती काँपे और जब वे खड़े हों तो सूर्य ढक जाय और चारों दिशाएँ न दिखें। यदि किसी देश की कोई जाति बलिष्ठ शरीर वाली प्रकट हो जाती है, तो वह देश भौतिक दृष्टि विश्व के उन्नत राष्ट्रों में गिना जाता है।

प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्
यः प्राक्स्वदेहाद्यमयोरजायत ।
तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा
यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

प्रजापतिः—कश्यप ने; नाम—नाम; तयोः—दोनों के; अकार्षीत्—रखा; यः—जो; प्राक्—प्रथम; स्व-देहात्—अपने शरीर से; यमयोः—जुड़वों में से; अजायत—उत्पन्न हुआ; तम्—उसको; वै—निस्सन्देह; हिरण्यकशिपुम्—हिरण्यकशिपु; विदुः—जानते हैं; प्रजाः—लोग; यम्—जिसको; तम्—उसको; हिरण्याक्षम्—हिरण्याक्ष; असूत—जन्म दिया; सा—वह (दिति); अग्रतः—पहले।.

जीवात्माओं के सृष्टा कश्यप ने अपने जुड़वां पुत्रों का नामकरण किया। जो पहले उत्पन्न हुआ उसका नाम उन्होंने हिरण्याक्ष रखा और जिसको दिति ने पहले गर्भ में धारण किया था उसका नाम हिरण्यकशिपु रखा।

तात्पर्य : *पिंड सिद्धि* नामक प्रामाणिक वैदिक ग्रंथ में गर्भावस्था का बहुत ही सुन्दर वैज्ञानिक वर्णन मिलता है। यह बताया गया है कि मनुष्य के वीर्य के दो बिन्दु क्रमशः स्त्री के गर्भाशय में प्रविष्ट होते हैं, तो दो भ्रूणों का विकास होता है और जब वे गर्भ से बाहर निकलते हैं, तो वे गर्भधारण के क्रम से विपरीत क्रम में निकलते हैं। अतः जिस शिशु का पहले गर्भ–

धारण होता है, वह बाद में जन्म लेता है और बाद वाला पहले जन्म लेता है। यहाँ पर हिरण्याक्ष पहले प्रकट होता है, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि वह बाद में गर्भ में आया था जबकि हिरण्यकशिपु पहले गर्भ में आया था इसलिए वह बाद में प्रकट हुआ।

चक्रे हिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च ।
वशे सपालाँल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

चक्रे—बनाया; हिरण्यकशिपुः—हिरण्यकशिपु; दोर्भ्याम्—अपने दोनों हाथों से; ब्रह्म-वरेण—ब्रह्मा के वरदान से; च—तथा; वशे—नियन्त्रण में; स-पालान्—उनके पालने वालों सहित; लोकान्—लोक; त्रीन्—तीन; अकुतः-मृत्युः—किसी से भी मृत्यु का भय न होना; उद्धतः—गर्वित, उद्धत।

ज्येष्ठ पुत्र हिरण्यकशिपु को तीनों लोकों में किसी से भी अपनी मृत्यु का भय न था, क्योंकि उसे ब्रह्मा से वरदान प्राप्त हुआ था। इस वरदान के कारण यह अत्यन्त दंभी तथा अभिमानी हो गया था और तीनों लोकों को अपने वश में करने में समर्थ था।

तात्पर्य : अगले अध्यायों में पता चलेगा कि ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए हिरण्यकशिपु ने कठिन तपस्या की थी और तब उसे अमर रहने का वरदान प्राप्त हुआ था। वस्तुतः ब्रह्माजी किसी को अमर होने का वर नहीं दे सकते, किन्तु अप्रत्यक्षतः हिरण्यकशिपु ने यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि इस भौतिक संसार का कोई भी व्यक्ति उसको मार न सके। दूसरे शब्दों में, चूँकि वह मूलतः वैकुण्ठ धाम से आया था, अतः इस लोक का कोई भी व्यक्ति उसे मार नहीं सकता था। इसीलिए उसे मारने के लिए स्वयं भगवान् को प्रकट होना पड़ा। भले ही कोई अपने ज्ञान के भौतिक विकास पर इतरा ले, किन्तु वह जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि इन चार भौतिक नियमों के प्रति निश्चेष्ट नहीं रह सकता। यह भगवान् की योजना थी कि वे जनता को बता दें कि हिरण्यकशिपु जैसा बलशाली व्यक्ति भी निश्चित अवधि से अधिक जीवित नहीं रह सका था। भले ही कोई हिरण्यकशिपु के समान बलशाली तथा अभिमानी और तीनों लोकों को अपने वश में करने वाला क्यों न हो ले, किन्तु उसे चिरकाल तक जीवित रहने या लूट का माल रखने की छूट नहीं है। न जाने कितने सम्राटों ने शासन किया होगा, किन्तु वे सभी अब विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गये। यही इस संसार का इतिहास है।

हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्य प्रियः प्रीतिकृदन्वहम् ।
गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृगयन्रणम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

हिरण्याक्षः—हिरण्याक्ष; अनुजः—छोटा भाई; तस्य—उसका; प्रियः—प्रिय; प्रीति-कृत्—प्रसन्न करने के लिए उद्यत; अनु-अहम्—प्रतिदिन; गदा-पाणिः—गदा धारण किये; दिवम्—उच्च लोकों को; यातः—घूमा; युयुत्सुः—लड़ने की इच्छावाला; मृगयन्—खोजते हुए; रणम्—युद्ध।

छोटा भाई हिरण्याक्ष अपने कार्यों से अपने अग्रज भ्राता को प्रसन्न रखने के लिए उद्यत रहता था। हिरण्यकशिपु को प्रसन्न रखने के उद्देश्य से ही उसने अपने कंधे पर गदा रखी और लड़ने की इच्छा से पूरे ब्रह्माण्ड में घूम आया।

तात्पर्य : यह आसुरी प्रवृत्ति है कि परिवार के सभी सदस्यों को अपनी इन्द्रिय-तृप्ति के लिए इस ब्रह्माण्ड के समस्त साधनों का उपभोग करना सिखाया जाय जब कि दैवी प्रवृत्ति भगवान् की सेवा में प्रत्येक वस्तु को लगाने के लिए प्रेरित करती है। हिरण्यकशिपु स्वयं अत्यन्त बलशाली था और उसने अपने छोटे भाई हिरण्याक्ष को भी बलवान बनाया था जिससे वह हर एक से लड़ने और प्रकृति पर जहाँ तक सम्भव हो, स्वामित्व प्राप्त करने में उसकी सहायता कर सके और यदि सम्भव हो तो वह सदा के लिए ब्रह्माण्ड पर शासन करना चाहता था। ये सब आसुरी जीव की प्रवृत्ति के प्रदर्शन हैं।

तं वीक्ष्य दुःसहजवं रणत्काञ्चननूपुरम् ।
वैजयन्त्या स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; वीक्ष्य—देखकर; दुःसह—वश में करना कठिन; जवम्—वेग; रणत्—बजती हुई; काञ्चन—स्वर्ण; नूपुरम्—नूपुर, पाँव का आभूषण; वैजयन्त्या स्रजा—वैजयन्ती माला से; जुष्टम्—आभूषित; अंस—कंधे पर; न्यस्त—टिका; महा-गदम्—बड़ी गदा।

हिरण्याक्ष के आवेग को नियंत्रण कर पाना कठिन था। उसके पैरों में सोने के नूपुरों की झनकार हो रही थी, उसके गले में विशाल माला सुशोभित थी और वह अपनी विशाल गदा को अपने एक कंधे पर धारण किये था।

मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् ।
भीता निलिल्यिरे देवास्ताक्ष्यत्रस्ता इवाहयः ॥ २२॥

शब्दार्थ

मनः-वीर्य—मनोबल तथा शारीरिक बल; वर—वरदान से; उत्सिक्तम्—दंभी, गर्वीला; असृण्यम्—रोक पाने में असमर्थ; अकुतः-भयम्—किसी से न डरने वाला; भीताः—डरे हुए; निलिल्यिरे—छिपा लिया; देवाः—देवताओं ने; ताक्ष्य—गरुड़ से; त्रस्ताः—भयभीत; इव—के समान; अहयः—सर्प।

उसके मनोबल, शारीरिक बल तथा ब्रह्मा द्वारा प्राप्त वरदान ने उसे दंभी बना दिया था। उसे न तो किसी से अपनी मृत्यु का भय था और न उस पर किसी का अंकुश था। अतः देवता उसे देखकर ही भयभीत हो उठते थे और अपने को उसी प्रकार छिपा लेते जिस तरह गरुड़ के भय से सर्प छिप जाते हैं।

तात्पर्य : जैसाकि यहाँ पर वर्णन हुआ है, सामान्य रूप से असुर अत्यन्त बलिष्ठ होते हैं, अतः उनकी मानसिक दशा भी ठीक रहती है और उनका शौर्य असाधारण होता है। हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु इस ब्रह्माण्ड के भीतर किसी के द्वारा न मारे जा सकने का वर प्राप्त करके प्रायः अमर बन गये थे और पूर्णतया निर्भय हो चले थे।

स वै तिरोहितान्दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् ।
सेन्द्रान्देवगणान्क्षीबानपश्यन्व्यनदद्भृशम् ॥ २३॥

शब्दार्थ

सः—उसने; वै—निस्सन्देह; तिरोहितान्—लुप्त; दृष्ट्वा—देखकर; महसा—शक्ति से; स्वेन—अपनी; दैत्य-राट्—दैत्यों (असुरों) का प्रधान; स-इन्द्रान्—इन्द्र सहित; देव-गणान्—देवताओं को; क्षीबान्—मदान्ध; अपश्यन्—न पाकर; व्यनदत्—गर्जना की; भृशम्—उच्च स्वर से।

पहले अपनी शक्ति के मद से चूर रहने वाले इन्द्र तथा अन्य देवताओं को अपने समक्ष न पाकर तथा यह देखकर कि उसकी शक्ति के सम्मुख वे सभी छिप गये हैं, उस दैत्यराज ने गम्भीर गर्जना की।

ततो निवृत्तः क्रीडिष्यन्गम्भीरं भीमनिस्वनम् ।
विजगाहे महासत्त्वो वार्धिं मत्त इव द्विपः ॥ २४॥

शब्दार्थ

ततः—तब; निवृत्तः—लौट आया; क्रीडिष्यन्—क्रीड़ा (कौतुक) करने के लिए; गम्भीरम्—गहरे; भीम-निस्वनम्—घोर गर्जना करता; विजगाहे—डुबकी लगाई; महा-सत्त्वः—शक्तिमान प्राणी; वार्धिम्—समुद्र में; मत्तः—क्रोध में; इव—समान; द्विपः—हाथी।

स्वर्गलोक से लौटने के बाद मतवाले हाथी के समान उस महाबली असुर ने भयानक गर्जना करते हुए गहरे समुद्र में क्रीड़ावश डुबकी लगाई।

तस्मिन्प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका
यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः ।
अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा
प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन् प्रविष्टे—समुद्र में घुसने पर; वरुणस्य—वरुण के; सैनिकाः—रक्षक; यादः-गणाः—जलचर जीव; सन्न-धियः—हकबकाये हुए; स-साध्वसाः—डर से; अहन्यमानाः—न मारा जाकर; अपि—भी; तस्य—उनकी; वर्चसा—धाक से; प्रधर्षिताः—घबड़ाकर; दूर-तरम्—बहुत दूर; प्रदुद्रुवुः—तेजी से भाग गये।.

समुद्र में उसके प्रवेश करते ही वरुण के सैनिक समस्त जलचर प्राणी डर गये और बहुत दूर भाग गये। इस प्रकार बिना वार किये ही हिरण्याक्ष ने अपनी धाक जमा ली।

तात्पर्य :कभी-कभी भौतिकतावादी असुर अत्यधिक बलशाली प्रतीत होते हैं और सारे संसार में अपना प्रभुत्व स्थापित करते दिखाई पड़ते हैं। यहाँ पर, हिरण्याक्ष ने अपनी आसुरी शक्ति से पूरे ब्रह्माण्ड में अपनी धाक जमा ली थी और देवतागण उसकी असाधारण शक्ति से भयभीत हो उठे थे। हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष से न केवल अन्तरिक्ष में देवता भयभीत जान पड़े, वरन् समुद्र के जल जीव भी भयभीत थे।

स वर्षपूगानुदधौ महाबल-
श्चरन्महोर्मीञ्छ्वसनेरितान्मुहुः ।
मौर्व्याभिजघ्ने गदया विभावरी-
मासेदिवांस्तात पुरीं प्रचेतसः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वर्ष-पूगान्—अनेक वर्षों तक; उदधौ—समुद्र में; महा-बलः—शक्तिशाली; चरन्—घूमते हुए; महा-ऊर्मीन्—उत्ताल तरंगें; श्वसन—वायु से; ईरितान्—ऊपर नीचे उठते हुए; मुहुः—पुनः पुनः; मौर्व्या—लोहे की; अभिजघ्ने—वार किया; गदया—गदा से; विभावरीम्—विभावरी; आसेदिवान्—पहुँचा; तात—हे विदुर; पुरीम्—राजधानी; प्रचेतसः—वरुण की।.

हे विदुर, वह महाबली हिरण्याक्ष अनेकानेक वर्षों तक समुद्र में घूमता हुआ वायु से दोलायमान उत्ताल तरंगों पर अपनी लोहे की गदा से बारम्बार प्रहार करता हुआ वरुण

की राजधानी विभावरी में जा पहुँचा।

तात्पर्य :वरुण को जल का प्रमुख देवता माना जाता है और विभावरी नाम से विख्यात उसकी राजधानी उसके जल-साम्राज्य के भीतर है।

तत्रोपलभ्यासुरलोकपालकं
यादोगणानामृषभं प्रचेतसम् ।
स्मयन्प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचव-
ज्जगाद मे देह्यधिराज संयुगम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; उपलभ्य—पहुँचकर; असुर-लोक—असुरों के रहने के भूभाग का; पालकम्—रक्षक; यादः-गणानाम्—जलचरों का; ऋषभम्—राजा; प्रचेतसम्—वरुण; स्मयन्—हँसते हुए; प्रलब्धुम्—हँसी उड़ाते; प्रणिपत्य—झुक करके; नीच-वत्—नीच मनुष्य की तरह; जगाद—कहा; मे—मुझको; देहि—दो; अधिराज—हे महान् राजा; संयुगम्—युद्ध।

विभावरी वरुण की पुरी है और वरुण समस्त जलचरों का स्वामी तथा ब्रह्माण्ड के अधः क्षेत्रों का रक्षक है, जहाँ सामान्य रूप से असुर वास करते हैं। वहाँ पहुँचकर हिरण्याक्ष नीच पुरुष के समान वरुण के चरणों पर गिर पड़ा और उसकी हँसी उड़ाने के लिए उसने मुस्कुराते हुए कहा, ''हे परमेश्वर, मुझे युद्ध की भिक्षा दीजिये।''

तात्पर्य :आसुरी पुरुष सदैव दूसरों को ललकारता है और उनकी सम्पत्ति पर बलपूर्वक अधिकार जमाने का प्रयत्न करता है। यहाँ पर ये लक्षण हिरण्याक्ष में पूर्णरूपेण देखे जाते हैं जिसने ऐसे पुरुष से युद्ध की भिक्षा माँगी जो लड़ना नहीं चाहता था।

त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा
वीर्यापहो दुर्मदवीरमानिनाम् ।
विजित्य लोकेऽखिलदैत्यदानवान्
यद्राजसूयेन पुरायजत्प्रभो ॥ २८॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम (वरुण); लोक-पालः—लोक का रक्षक; अधिपतिः—शासक; बृहत्-श्रवाः—कीर्तिवान्; वीर्य—शक्ति; अपहः—घटा हुआ; दुर्मद—घमंडी का; वीर-मानिनाम्—अपने को महान् वीर समझते हुए; विजित्य—जीतकर; लोके—संसार में; अखिल—समस्त; दैत्य—असुर; दानवान्—दानवों को; यत्—जहाँ से; राज-सूयेन—राजसूय यज्ञ द्वारा; पुरा—प्राचीनकाल में; अयजत्—पूजा की; प्रभो—हे भगवान्।

आप समस्त गोलक के रक्षक तथा अत्यन्त कीर्तिवान शासक हैं। आपने अहंकारी

तथा मोहग्रस्त वीरों के दर्प को दल कर तथा इस संसार के सभी दैत्यों तथा दानवों को जीत कर भगवान् के हेतु एक बार राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया था।

स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा
दृढं प्रलब्धो भगवानपां पतिः ।
रोषं समुत्थं शमयन्स्वया धिया
व्यवोचदङ्गोपशमं गता वयम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

सः—वरुण; एवम्—इस प्रकार; उत्सिक्त—चूर; मदेन—मद से; विद्विषा—शत्रु के द्वारा; दृढम्—अत्यधिक; प्रलब्धः—हँसी उड़ाए जाने पर; भगवान्—पूज्य; अपाम्—जल का; पतिः—स्वामी; रोषम्—क्रोध; समुत्थम्—उठकर; शमयन्—शान्त करते हुए; स्वया धिया—अपने तर्क से; व्यवोचत्—उसने उत्तर दिया; अङ्ग—हे प्रिय; उपशमम्—युद्ध से विरत; गताः—गये हुए; वयम्—हम।

अत्यन्त दंभी शत्रु के द्वारा इस प्रकार उपहास किये जाने पर जल के पूज्य स्वामी को क्रोध तो आया, किन्तु तर्क के बल पर वे उस क्रोध को पी गये और उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया—हे प्रिय, युद्ध के लिए अत्यधिक बूढ़ा होने के कारण अब मैं युद्ध से दूर रहता हूँ।

तात्पर्य :जैसाकि हम देखते हैं, युद्धप्रिय भौतिकतावादी लोग सदैव अकारण ही युद्ध थोप देते हैं।

पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुरातनाद्
यः संयुगे त्वां रणमार्गकोविदम् ।
आराधयिष्यत्यसुरर्षभेहि तं
मनस्विनो यं गृणते भवादृशाः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

पश्यामि—देखता हूँ; न—नहीं; अन्यम्—अन्य; पुरुषात्—पुरुष की अपेक्षा; पुरातनात्—अत्यन्त प्राचीन; यः—जो; संयुगे—युद्ध में; त्वाम्—तुमको; रण-मार्ग—युद्ध कला में; कोविदम्—अत्यन्त पटु; आराधयिष्यति—सन्तोष मिलेगा; असुर-ऋषभ—हे असुरों के प्रमुख; इहि—पास जाओ; तम्—उसको; मनस्विनः—बहादुर; यम्—जिसको; गृणते—प्रशंसा करते हैं; भवादृशाः—तुम्हारी तरह।

तुम युद्ध में इतने कुशल हो कि मुझे परम पुरातन पुरुष भगवान् विष्णु के अतिरिक्त कोई ऐसा नहीं दिखता, जो तुम्हें युद्ध में तुष्टि प्रदान कर सके। अतः हे असुरश्रेष्ठ, तुम उन्हीं के पास जाओ, जिनकी तुम जैसे योद्धा भी बड़ाई करते हैं।

तात्पर्य :आक्रामक योद्धाओं को वास्तव में परमेश्वर ही दण्डित करते हैं, क्योंकि वे वृथा ही विश्वशान्ति को भंग करते हैं। अत: वरुण ने हिरण्याक्ष को सलाह दी कि वह अपनी युद्ध-लालसा को विष्णु के साथ युद्ध करके पूरा करे।

तं वीरमारादभिपद्य विस्मय:
शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृत: ।
यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये
रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; वीरम्—परम वीर; आरात्—तुरन्त; अभिपद्य—पहुँचने पर; विस्मय:—गर्व से रहित; शयिष्यसे—तुम सो जाओगे; वीरशये—युद्ध भूमि में; श्वभि:—कुत्तों के द्वारा; वृत:—घिरे हुए; य:—जो; त्वत्-विधानाम्—तुम समान; असताम्—दुष्ट पुरुषों का; प्रशान्तये—मार भगाने; रूपाणि—विविध रूप; धत्ते—धारण करता है; सत्—सत्पुरुषों के लिए; अनुग्रह—अपनी कृपा दिखाने के लिए; इच्छया—इच्छा से।

वरुण ने आगे कहा—उनके पास पहुँचते ही तुम्हारा सारा अभिमान दूर हो जाएगा और तुम युद्धभूमि में कुत्तों से घिरकर चिर निद्रा में सो जाओगे। तुम जैसे दुष्टों को मार भगाने तथा सत्पुरुषों पर अपनी कृपा प्रदर्शित करने के लिए ही वे वराह जैसे विविध रूपों में अवतरित होते रहते हैं।

तात्पर्य : असुरों को यह पता नहीं रहता कि उनके शरीर पंचतत्त्वों से निर्मित हैं और मरने पर इन्हें कुत्ते तथा गीध आनन्दपूर्वक खा जाएँगे। वरुण ने हिरण्याक्ष को सलाह दी कि वह विष्णु के वराह अवतार के पास जाए जिससे उसकी युद्ध-कामना पूरी हो और उसका बलिष्ठ शरीर छिन्न-भिन्न हो जाय।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्ध के अन्तर्गत ''हिरण्याक्ष की दिग्विजय'' नामक सत्रहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।